Artistic Narration, Vol. IX, 2018, No. 1: ISSN (P) : 0976-7444 (e) : 2395-7247Impact Factor 3.9651 (ICRJIFR)
UGC Approved Journal No. 43285

मध्यकालीन संगीत मनीषियों के ग्रन्थों में ताल

डॉ० शम्पा चौधरी

एसोसिएट प्रोफेसर
संगीत विभाग
वी० एम०एल०जी० कॉलेज गाजियाबाद
ईमेल : shampa1410@gmail.com

सारांश

भारत एकमात्र ऐसा देश है, जिसने लयात्मक गतियों को विभिन्न ताल स्वरूपों में निबद्ध कर लय तत्वों में निहित ब्रह्मानन्द से रस लेते हुये संगीत को आनन्द और अनुशासन का ठोस आधार प्रदान किया, जो ताल कहलाया। ताल संगीत के आधारभूत तत्वों में से एक है यह संगीत में व्यतीत हो रहे समय को मापने का महत्वपूर्ण साधान है, जो विभिन्न मात्राओं, विभागों, ताली–खाली आदि के संयोग से बनता है। आज मात्र संगीत में व्यतीत हो रहें समय को मापने की सबसे छोटी ईकाई है, किन्तु प्राचीनकाल से मध्यकाल तक ताल मापने के साधन अलग थे। तब कमल के सौ पत्तो को एक के ऊपर एक रखकर एक सुई से छिद्र करने पर जितना समय लगता था, वह एक क्षण कहलाता था और इस क्षण के आधार पर 8 क्षण का एक लव, 8 लव की एक काष्ठा, 8 काष्ठा का 1 निमेष, 8 निमेष–1 कला, 2 कला–1 त्रुटि या अणुद्रुत, 2 अणुद्रुत–1 द्रुत, 2 द्रुत–1 लघु 2 लघु–1 गुरू और 3 लघु–1 प्लुत होते चे। किन्तु कुछ संगीत मनीषियों को काल निर्णय की यह रीति स्वीकार्य नहीं थी।

गायन वादन तथा नृत्य को ताल से ही स्थिरता प्राप्त होती हैं

लघु आदि प्रमाण की क्रियाओं द्वारा मापा जानेवाला ओर गीत आदि के परिमापों को धारण करने वाला ताल ही होता है। तेरहवीं शताब्दी में शारंगदेव ने ताल की जो परिभाषा दी थी, वह आज भी सर्वमान्य है ऐसी ही कृतियों को कालजयी कहा जाता है।

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ० शम्पा चौधरी

मध्यकालीन संगीत मनीषियों के ग्रन्थों में ताल

Artistic Narration 2018, Vol. IX, No.1, pp.31-36

https://anubooks.com/journal-volume/-artistic-narration-no-ix-no-1-2018-special-april-issue

मुख्य बिन्दुः कला,नृत्य,ताल,मात्रा,ग्रन्थ

मध्यकालीन संगीत मनीषियों के ग्रन्थों में ताल

डॉ० शम्पा चौधरी

मध्यकाल में भारत पर विदेशी आक्रमणों का दौर जारी था। आक्रमणों के कारण संगीतज्ञों में बिखराब आ जाने से संगीत भी बिखरने लगा था। ऐसे समय शारंगदेव ने देश के भिन्न–भिन्न भागों का भ्रमण करके, वही के संगीतज्ञों से चर्चा करके वहीं के गायन, वादन और नर्त्तन तथा उनके साथ प्रयुक्त तालों का अध्ययन और संग्रह करके अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में 120 तालो का विवरण दिया है सम्भव है कि इनमें से कुछ तालो की रचना उन्होनें स्वयं भी की हो। शारंगदेव ने द्रुत0, लघु1, गुरू ऽ और प्लुत डे तथा विराम चिन्हों की रचना करके तालों को एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने का भी प्रयास किया। इनमें द्रुत 1/2 मात्रा, लघु। मात्रा गुरू 2 मात्रा प्लुत 3 मात्राओं के थे। रत्नाकार के अनुसार लघु, गुरू, प्लुत आदि इकाईयों के माप से सशब्द, निशब्द क्रियाओं द्वारा मापा गया वह समय जो गीत, वाद्य, नृत्य आदि को विशेष रूप से धारण करता है ताल कहलाता है। संगीत रत्नाकार के अनुसार तालों के मुख्य दो प्रकार है चतुरश्र और त्रयश्र जिनके नाम क्रमशः चच्चतपुटः और चाचपुट हैं, डॉ0 सुभद्रा चौधरी के अनुसार 'अश्र' का अर्थ है 'कोना'। इस आधार पर चतुरश्र चार कोनोंवाला और त्रयश्र तीन कोनोंवाला ताल हुआ। इन दोनों तालों में क्रमशः चार और तीन गुरू हैं, जो चार और तीन कोनों के प्रतीक हैं। चार संख्या सम की और तीन विषम की सूचक है। इन दोनों तालों को अन्य तालों की मूल प्रकृति का आधार माना गया है।

रत्नाकार में 120 तालों के नाम, लक्षण, संकेत–चिन्ह और मात्रायें आदि दी गई हैं। अभी तक की प्राप्त जानकारियों के अनुसार शारंगदेव ने ही सर्वप्रथम देशी ताल शब्द का प्रयोग किया। मार्ग और देशी तालों में स्थूल अन्तर यह है कि दोनों की मौलिक इकाई भिन्न हैं।

मार्ग में सशब्द, निःशब्द क्रियायें अनिवार्य हैं, देशी में नहीं। मार्ग में लघु का माप निश्चित होता है, जबकि देशी में बदलता रहता है। उल्लेखनीय यह भी है कि विभिन्न ग्रन्थों में देशी तालों की संख्या अलग–अलग है। संगीत रत्नाकार में 120, संगीत चूड़ामणि में 96 और संगीतराज में 138 तालों का वर्णन है। इसलिये इनकी कुल संख्या बता पाना कठिन है। संगीत रत्नाकर के ही विचारों का अनुमोदन हुआ है। लेकिन इन ग्रन्थों की कुछ विशेषताओं पर एक संक्षिप्त दृष्टि डालना भी उपयुक्त होगा।

आचार्य नान्यदेव ने अपनी पुस्तक 'भरत भाष्यम्' में नाम के अनुरूप भरत मुनि के ही मतों का अनुमोदन किया है।

'संगीत चूड़ामणि' नामक ग्रन्थ में तालों के चार लक्षण दिये गये है। इसमें उल्लिखित सभी ताल रत्नाकार में है। कुछ तालों के नाम वे ही हैं, लेकिन स्वरूप में कुछ अन्तर है।

इसमें कुल 101 तालों का उल्लेख और 96 तालों का विवरण है। इसमें ताल–लक्षणों के देवता भी बताये गये है, जैसे द्रुत के शम्भु, लघु की गौरी, गुरू के शिव और गौरी दोनो तथा प्लुत के ब्रह्मा, विष्णु, महेश।

नरद कृत संगीत मकरन्द मे परिभाषा सहित 103 तालो का वर्णन है,किन्तु मार्गी और देसी तालों का वर्गीकरण नही है। नारद ने ताल के दस प्राणो का उल्लेख किया है।त्रयश्र कलाओं के लिए इस ग्रन्थ में 6,12,24,48 व 96 तथा चतुरश्र कलाओं के लिये 4,8,16,32,64 और 128 का उल्लेख है। संगीत मकरन्द में तीन प्रकार के लय भी दिये गये है।संगीत मकरन्द में ध्वनि के आधार पर संगीत वर्गीकरण करते हुये लेखक ने नखज,वायुज,चर्मज, लौहज, और श्रीरज नाम दिये है। इनमे से चर्मज और लौहज श्रेणी के वाद्य लय और ताल निर्वहन हेतु प्रयुक्त होते थे। मकरन्द मे लय और ताल का पूरा महत्व मिला। नारद ने पाँच मार्गी तालों की उत्पति सदाशिव के मुख से बताते हुए उन तालो के रंग,वर्ण और यति के विषय में भी बताया गया है। पाँच मार्ग तालों को पाँच

महापातको बह्महत्या, मदिरापान, सोने की चोरीए पर स्त्रीगमन और इन सबके एक साथ संयोग का एक साथ परिहार करने में समर्थ बताया है। नारद के शब्दां में देशी ताल भी पापनाशक,यज्ञ का फल देनेवाले,राज्य की वृद्धि करने और सन्तान–सुख देने वाले,शत्रुनाशक में सौभाग्य, अतुल आरोग्य, कामशास्त्र में वृद्धि देनेवाला और राजाओं की कीर्ति बढाने में समर्थ है।

जैन आचार्य सुधाकलश वाचनाचार्य लिखित 'संगीतोपनषित सारोद्धारा' ग्रन्थ में तालविहीन गायन,वादन और नृत्य को निरर्थक करार देते हुऐ इसमें ताल के विभिन्न अवयवों का वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत द्रुत, लघु,, गरू, प्लतु, कला, प्रस्तार, विराम, कालमान तथा मात्रा आदि का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ के तालाध्य में एक मात्रा से दस मात्रा वर्गो में 74 तालों के लक्षण दिये गये है। इनमें से केवल एक पूर्णचन्द्र ताल 30 मात्राओ का है तो दूसरा पृथ्वी कुण्डली ताल 60 मात्राओं का है। इन दो तालो को छोड.कर शेष सभी ताल रत्नाकर में है। यघपि लक्षण में कुछ भिन्नता है। एक माला ताल के छोटे तालों के लियें निर्देश है कि ऐसे तालों के चौगुना करके लक्षण दिये जाये।एक मात्रावाले वर्ग में 1.3 ⁄ 4 मात्रा तक के ताल उल्लिखित है।

यह सम्भवतः ऐसा प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें लक्षण के साथ–साथ तालों के पाटाक्षर अथवा ठेके भी दिये गये हैं, जैसे चार मात्रे का आदि ताल :

त द्वि थउ द्रे
। । । ।

इसी प्रकार आठ मात्रे का श्रीरंग ताल भी है, जिसका लक्षण।। S।... लघु, लघु, गुरू, लघु और प्लुत है :

घिग्ऽितकि थुंग्ऽिदिगि थगुतक्विता ततत तककुटिघिटटें
। । S । S

'रस कौमुदी' मध्य युग का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें ताल के दस लक्षणों का निरूपण हुआ है। इसमें काल के क्षण से प्लुत तक के अवयवों के मानों का, मार्ग में ध्रुव आदि चार मार्गों का, क्रिया में सशब्द और निःशब्द क्रियाओं का, अंग में द्रुत, गुरू आदि अवयवों का, ग्रह में अतीत, अनागत आदि ग्रहों का तथा जाति में चतुरश्र और त्रयश्र आदि जातियों का यति में स्त्रोतागता आदि और अन्त में प्रस्तार का निरूपण है। प्राप्त ग्रन्थ में कला और लयवाला अंश नहीं मिलता है।

शुभंकर कृत 'संगीत दामोदार' का रचनाकाल पन्द्रहवीं शताब्दी माना गया है। तालों के वर्गीकरण हेतु शुभंकर ने भी द्रुत, लघु, गुरु एवं प्लुत मात्राओं का ही आधार लिया है। इसमें वर्णित 101 तालों की उपलब्ध सूची में से मात्र 60 तालों के ही विवरण दिये गये हैं। इसके आगे ताल–प्रस्तर को समझाते हुये लेखक ने लिखा है कि दीर्घतम मात्रा प्लुत के प्रारम्भ कर क्रमशः न्यूनतम मात्रा द्रुत तक प्रस्तार–क्रम होता है। ताल आघातों का संक्षिप्त विवरण तो अन्त में दिया गया है, किन्तु शब्दों के माध्यम से उनका प्रायोगिक प्रदर्शन अस्पष्ट है।

'आनन्द संजीवनी' नामक पुस्तक में गुरु और प्लुत का माप लघु में न देकर द्रुत के द्वारा इस प्रकार किया गया है– चार द्रुत से एक गुरु और छह द्रुत से एक प्लुत होता है। द्रुत का माप आधी कला कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि लेखक की दृष्टि में कला का अर्थ एक लघु है : चतुर्द्रुतो गुरुर्ज्ञेय षऽद्रुतः प्लुत उच्येत, अर्थात् दो द्रुत–एक कला–एक लघु।

भावभट्ट कृत 'अनूप संगीत रत्नाकार', 'अनूप संगीत विलास' एवं 'अनूप संगीतांकुश ग्रन्थों में ताल सम्बन्धी ढेरों विवरण रत्नाकार से ही लिये गये हैं। इसमें आंजनेय मत से ताल के लघु, गुरु का मान ठीक उसी रूप में दिया गया है, जिस रूप में संगीत समय सार में क्षण, काष्ठा, लव आदि के मान दिये गये हैं। इससे प्रतीत होता है कि ताल के दस प्राण की अवधारणा काफी पहले से चली आ रही होगी।

अपराजिता नृच्छा मूलतः स्थापत्य विषयक् ग्रन्थ है, जिसमे ताल के महत्व पर प्रकाश डालते हुये लिखा गया है कि वाद्य ताल मे उसी प्रकार परिवर्तित होता है,जैसे रथ मे पथिक।ताल रहित कोई वाद्य नही । ताल रहित वाद्य नेत्रहीन मानव, शक्तिहीन हाथ, मन्त्री बीना राज्य और बिना रोशनी के अँधेरे भवन जैसा है। इसमें पाँच तालो, उनके लक्षणो पर भी प्रकाश डाला गया है।

व्यंकट मुखी कृत चतर्दण्डी प्रकाशिका के माध्यम से 17 वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में एक बडा मोड आया, जिससे दक्षिण भारतीय ताल पद्धति का जन्म हुआ। इसका निरूपण सबसे पहले चतुर्दण्डी प्रकाशिका और संगीत पारिजात जैसे ग्रन्थों मे ही मिलती है।चतर्दण्डी प्रकाशिक में अंलकारो का निरूपण करते हुये आठ प्रकार के अंलकार बताये गये है,जो तालों के स्वरूप को स्पष्ट करने वाले स्वर – समूह है। ये जिन तालो में निबद्ध है, उनके नाम हैं– झोपट,ध्रुव मठ्य या मंठ, रूपक,झम्पा, त्रिपुट, अड्डा तथा एकताल या एकताली।

संगीत पारिजात और चतुर्दण्डी प्रकाशिका के अलावा विरूपाक्ष 'कृत ताल'–चन्द्रिका में भी ध्रुव आदि सात तालों का निरूपण,तालो की पाँच जातियाँ और जातियों के अनुसार उनके लक्षण दिये बये है। इसमे इस बात का डल्लेख है कि किस ताल का प्रयोग किस जाति में होता है। ताल का लक्षण बताते समय इसमें हर ताल के पाँच प्रकार बताये गये हैं। द्रुत और अणुद्रुत का काल क्रमशः 2 और 1 अक्षर नियत है,लेकिन लघु और उनके अनुपात में गुरू तथा प्लुत का माप जाति के अनुसार बदल जाता है। यहाँ ध्रुव ताल को पाँच जातियों में लिखा जा रहा है। ध्रुव कर लक्षण लघु, गुरू, द्रुत हैः

ध्रुव चतुरश्र = 4+8+2 = 14
ध्रुव त्रयरश्र = 6+12+2 = 20
ध्रुव मिश्र = 7+14+2 = 23
ध्रुव खण्ड = 5+10+2 = 17
ध्रुव संकीर्ण = 9+18+2 = 29

यहाँ जाति के अनुसार लघु और उसके अनुपात में गुरु का अक्षर काल बदल गया, किन्तु द्रुत यथावत् है।

ताल–चन्द्रिका में दिये गये तालों का स्वरूप और कर्नाटक पद्धति के वर्तमान सात तालों पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि ताल–चन्द्रिका चतुर्दण्डी प्रकाशिका और वर्तमान ताल–पद्धति के बीच की स्थिति में है। क्योंकि चतुर्दण्डी प्रकाशिका में द्रुत और अणुद्रुत के अलावा दूसरी इकाइयों का माप तो बदलता है, लेकिन तालों की पाँच जातियों व उनके स्वरूप की उसमें कोई चर्चा नहीं है। दूसरी ओर, वर्तमान तालों में पाँच जातियों व उनके स्वरूप की उसमें कोई चर्चा नहीं है। दूसरी ओर, वर्तमान तालों में पाँच जातियाँ हैं, लेकिन सिर्फ लघु का रूप बदला है, दूसरी इकाईयों का नहीं। ताल–चन्द्रिका में लघु के साथ–साथ गुरु का स्वरूप भी बदलता है।

'संगीत नारायण' ग्रन्थ में सशब्द आदि क्रियाओं का रूप प्राचीन से भिन्न है। लघु के साथ गुरु और प्लुत के अनुपात को बताते हुये लघु में एक घात अर्थात् सशब्द क्रिया की, गुरु में एक घात और एक निःशब्द की तथा

प्लुत में एक घात और दो निःशब्द की तथा प्लुत में एक घात और दो निःशब्द क्रिया बताया गया है, जिसका अर्थ यह है कि निःशब्द क्रिया सशब्द क्रिया के विस्तार में प्रयुक्त होती है। उसका स्वतन्त्र स्वरूप नहीं है।

सालगसूड़ों में प्रयुक्त होने वाले आदि, यति, निस्सारु, अड्ड, त्रिपुटत्र रूपक, झम्प, मठ और एकताली इन नौ तालों के लक्षण और गीतों के उदाहरण भी हैं। आजकल उड़ीसा में उड़िया संगीत में जो ताल प्रचलित हैं, उनके नाम वही हैं, जो संगीत नारायण में हैं।

संगीत नारायण में ग्रहों का विवरण प्रचलित धारणाओं से भिन्न है। यहाँ अतीत का अर्थ है कि गीत पहले शुरू हुआ और उसके बाद ताल का सम आया। इसी प्रकार अनागत का अर्थ है कि ताल का सम पहले आ गया और गीत बाद में शुरू हुआ।

संगीत पारिजात में देशी वर्ग के तकरीबन 165 तालों के नाम उल्लिखित हैं, जिनमें से 158 के लक्षण भी हैं, यद्यपि कुछ के लक्षण पूरे नहीं हैं, इनके कई तालों के नाम संगीत दर्पण से मिलते–जुलते हैं। इस ग्रन्थ में 15 तालों के ठेके भी दिये गये हैं। 28 मात्रा के ब्रह्म ताल का तत्कालीन ठेका निम्नवत् था।

मध्ययुगीन ग्रन्थो के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि चूँकि मार्ग तालों में किसी प्रकार के परिवर्तन की गुँजाइश नहीं थी, अतः अधिकांश लेखकों ने रत्नाकर का ही अनुसरण किया, फिर भी कुछ तत्वों के निरूपण का ढंग बदला तो कुछ के स्वरूप में भी अन्तर आया क्योंकि हर संगीतकार की अपनी सोच होती है। जैसे देशी संगीतकार की अपनी सोच होती है ।जैसे देशी तालो की सबसे छोटी इकाई पहले द्रुत होती थी,लेकिन मध्यकाल में लघु के 256 अकंतक इकाईयों को खींचा गया। संगीत दर्पण के अनुसार,दक्षिण मार्ग 2 मात्रा, वात्कि मार्ग,4 मात्रा, चित्रतर एक मात्रा त्रचित्रतक 1/2 मात्रा अर्थात् द्रुत अतिचित्रतम् 1/4 मात्रा अर्थात् अणुद्रुत, चतुभाग 1/8 मात्रा अर्थात् कालिका वृत्ति, त्रुटि 1/32 मात्रा,घर्षण 1/64 मात्रा,अनुघर्षण 1/128 मात्रा और स्वर 1/156 मात्रा था। लेकिन कला मात्र गणित नही है। इसलिये गणित और लेखन के आधार पर हम चाहे इनके जितने भी भाग कर ले,लेकिन कला के रूप में इतनी छोटी इकाई का स्वतन्त्र रूप में प्रयोग अत्यन्त कठिन है ।तालाघात के विषय में अणु, द्रुत, लघु,गुरू और प्लुत–अन पाँच मुख्य अवयवा में हाथ का घात किस तरह किया जायें,इसका निर्देश संगीत दर्पण में इस प्रकार हैः अणु में अति अल्प घात,द्रुत में सूक्ष्म घात, लघु में पूर्ण घात, गुरू में घात, के बाद हाथ को ऊपर की ओर फेंकना और प्लुत में घात के बाद हाथ को गोल घुमाना। इन घातों में लगनेवाले समय को दृश्य रूप देने के लिये यह भी बताया गया कि आघात में हाथों की दूरी घतों में क्रम से डेढ, तीन, छह, बारह, और अट्ठारह अंगुल की होनी चाहिये।

संगीत रत्नाकर और संगीतराज तक जाति सिर्फ ताल की सूचक थी। चतुरश्र इैर त्रयश्र का सम्बन्ध ताल के सम, विषम की सूचना, चार और तीन कला–संख्या अथवा पद–भागों में कला की संख्या थी, तब संकीर्ण में चतुरश्र और त्रयश्र का मिश्रण था तथा चतुरश्र और त्रयश्र के खण्डन से खण्ड जाति के ताल बनते थे, लेकिन कला गुरू–रूपा थी और उसका निशचित अपरिवर्तन मान 10 लघु अक्षर था। लेकिन बाद में जाति के प्रति सोच में काफी परिवर्तन आया। इसका उल्लेख रसमंजरी और संगीत दर्पण आदि में हुआ है। इन गग्रन्थों में चतुरश्र, तिस्त्र, खण्ड, मिश्र और संकीर्ण इन पाँच जातियों को एक मात्रा में क्रम से 4,3,5,7 और 9 वर्ण बताये गये है। पहले जहाँ समा, स्त्रोगता, गोपुच्छा–ये तीन यतियाँ ही प्रचार में थी, वही बाद में मृदंगा और पिपीलिका, ये दो अन्य यतियाँ भी शामिल होने ो यतियों की कुल संख्या पाँच हो गई। इसके बाद तो माााा मार्गी मार्गी और देशी तालों का भेद भी मिटने लगा।

हालाँकि संगीत दर्पण में मार्ग और देशी तालों का वर्णन इन्हीं वर्गों में अलग–अलग हुआ है। लेकिन बाद में संगीत समयसार, संगीत सरोद्धार, संगीत दामोदार, रसमंजरी तथा कई अन्य ग्रन्थों में भी मार्ग और देशी तालों के नाम और लक्षण एक साथ ही दिये गये हैं। तालों की संख्या भी दोनों को मिलाकर बताई गई है। अनुमान है कि मार्ग ताल की क्रिया, क्रियाविधि आदि का प्रयोग समाप्त होकर देशी तालों की तरह ही इन तालों का प्रयोग होता रहा। लक्षण–निरूपण में सर्वप्रथम मार्ग तालों के ही लक्षण दिये जाते थे। इससे ऐसा लगता है कि मार्ग तालों की प्रधानता देशी तालों से अधिक थी।

13वीं शताब्दी से भारत पर मुगलों का आक्रमण आरम्भ हो चुका था। बाद में मुगलों का शासन भी स्थापित हो गया। उत्तर भारत में दोनों संस्कृतियाँ एक–दूसरे के करीब आई, जबकि दक्षिण में इनमें परस्पर दूरी बनी रही। अतः उत्तर भारत के संगीत में धीरे–धीरे बदलाव शुरू हो गया, जिसका असर 15वीं शताब्दी के आसपास दिखना आरम्भ हुआ।

निष्कर्ष

आज हम संगीत की जिन शैलियों, रागों तालों की चर्चा करते हैं, गाते–बजाते–सुनते हैं, वे सभी कालखण्ड में सामने आई। भले ही इनके सृजन का कार्य पहले से ही प्रारम्भ हो चुका था। अमीर खुसरो की कुछ रचनायें खयाल आदि के रूप में गाई जाती हैं। 15वीं शताब्दी में मानसिंह तोमर के संरक्षण में ध्रुवपद गायकी निखरकर सामने आई। लगभग इसी समय सुल्तान हुसैन शर्की ने खयाल और शोरी मियाँ ने टप्पा जैसी गायकी का प्रचार–प्रसार किया। ध्रुवपद, प्रबन्ध गायन का ही रूप था तो धमार ध्रुवपद का, क्योंकि तब ध्रुवपद में पखावज के साथ लड़न्त

की परम्परा नहीं थी। ध्रुवपद के अनुशासन रूपी कठोर बन्धनों से कुछ मुक्ति पाने के प्रयास में खयाल सामने आया। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कायदे के कठोर अनुशासन से कुछ हद तक स्वतंत्र होने के प्रयास में पेशकार विकसित हुआ। जैसे–जैसे नवीन गायन–शैलियाँ विकसित होती रहीं, वैसे–वैसे नये ताल भी बनते रहे, उनके ठेके भी बदलते रहे।

यहाँ यह कहना शायद गलत न होगा कि 15वीं शताब्दी में संगीत का जो स्वरूप विकसित हुआ, वह कुछ परिवर्तनों के साथ ही सही, आज 21वीं शताब्दी में भी मौजूद है।

संदर्भ

1. सेन, विजय लक्ष्मी. संगीत दर्शन।
2. सेन, डॉ० अरूण कुमार. भारतीय ताली का शास्त्रीय विवेचन।
3. शर्मा, भगवत शरण. भारतीय इतिहास में संगीत।
4. वीर, राम अवतार. भारतीय संगीत का इतिहास।
5. मिश्र, लालमणि. संगीत ताल वाघ।